इकाई 1 श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय एवं तात्पर्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय

- 1.2.1 महत्त्व
- 1.2.2 नामकरण
- 1.2.3 गीता तथा महाभारत
- 1.2.4 रचनाकाल
- 1.2.5 विषय-वस्तु
- 1.2.6 भाष्यकार एवं टीकाकार

1.3 श्रीमद्भगवद्गीता का तात्पर्य

- 1.3.1 महर्षि व्यास का दृष्टिकोण
- 1.3.2 शङ्कराचार्य का दृष्टिकोण
- 1.3.3 अभिनवगुप्तपादाचार्य का दृष्टिकोण
- 1.3.4 रामानुजाचार्य का दृष्टिकोण
- 1.3.5 मध्वाचार्य की दृष्टिकोण
- 1.3.6 निम्बार्काचार्य का दृष्टिकोण
- 1.3.7 वल्लभाचार्य की दृष्टिकोण
- 1.3.8 रामानन्दाचार्य का दृष्टिकोण
- 1.3.9 लोकमान्य तिलक का दृष्टिकोण
- 1.3.10 पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर का दृष्टिकोण

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.8 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

श्रीमद्भगवद्गीता से सम्बद्ध इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय दे सकेंगे।
- श्रीमद्भगवद्गीता के विषय-वस्तु की व्याख्या कर सकेंगे।

- श्रीमद्भगवद्गीता के महत्त्व को व्यवस्थित रूप से समझ सकेंगे।
- श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्यकारों एवं टीकाकारों के बारे में जान सकेंगे।
- श्रीमद्भगवद्गीता के तात्पर्य को जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

'श्रीमद्भगवद्गीता' सनातन धर्म एवं संस्कृत वाङ्मय का एक अत्यन्त सुप्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है। यह महर्षि वेद व्यास रचित महाभारत जैसे विशालकाय ग्रन्थ का सारभूत अंश है। यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें दर्शन, धर्म और नीति का समन्वय हुआ है। गीता में अत्यन्त सुबोध तथा सरल भाषा में निःश्रेयस-प्राप्ति के उपाय अभिव्यक्त किये गये हैं, जिसे सर्वसाधारण सहजता से समझ सकते हैं। निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष के सन्दर्भ में गीता का सन्देश सरल है और वह है भक्ति अर्थात् ईश्वर में श्रद्धाभाव। गीता में अध्यात्मतत्त्व के निरूपण के लिए पूर्ववर्ती विभिन्न दार्शनिक मतों की उद्भावनाओं का उपयोग करते हुए एक सुगम साधन मार्ग को प्रतिपादित किया गया है। गीतानुमोदित मार्ग भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक प्रवृत्ति के सभी लोगों के लिए कल्याणप्रद है। गीता के महत्त्व का प्रमुख कारण उसकी समन्वयदृष्टि है। जिस प्रकार इसमें आध्यात्मिक तथ्यों का प्राञ्जल तथा सुबोध भाषा में समन्वय प्रस्तुत किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही गीता के सार्वभौमिक महत्त्व का आधार भी है। गीता भारतीय दर्शन का अनुपम रत्न है। दार्शनिकों ने इसकी गणना **'प्रस्थानत्रयी'** (उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र) में करके इसकी महत्ता को पूर्णरूपेण स्वीकार किया है। साथ ही सनातन धर्म के वरेण्य आचार्यों तथा दार्शनिक सम्प्रदायों के विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार भाष्यों तथा टीकाओं का लेखन करके गीता के तात्पर्य को अभिव्यक्त करने का महनीय प्रयास किया है। गीता का व्यापक प्रचार-प्रसार न केवल भारत में है अपितु सम्पूर्ण विश्व में यह अत्यन्त लोकप्रिय है। आज विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद उपलब्ध हैं। गीता का ही यह सार्वजनिक आकर्षण है कि विद्वानों द्वारा गीता पर अनेक पाण्डित्यपूर्ण विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखे गये हैं और निरन्तर लिखे भी जा रहे हैं। गीता का सन्देश सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। इसका उपदेश किसी सम्प्रदाय-विशेष के लिए नहीं, अपितु मानवमात्र के लिए कल्याणकारी है।

1.2 श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय

भगवद्गीता सनातन धर्म के दार्शनिक साहित्य का अनुपम एवम् अद्वितीय ग्रन्थ है। यह महाभारत का सारतत्त्व है। यह महाभारत के भीष्मपर्व (षष्ठपर्व) के अध्याय (25-42) कुल 18 अध्यायों में संकलित है। इसमें 700 श्लोक हैं। इसकी भाषा जितनी सरल है, भाव उतने ही अधिक गम्भीर हैं। गीता का उपदेश सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक है। जिस परिस्थिति में गीता का उपदेश प्रदान किया गया था, वह असाधारण थी। महाभारत का भयङ्कर संग्राम होने जा रहा था, जिसमें भाई के सामने भाई उसका वध करने के लिए तैयार खड़ा था। ऐसी विपरीत परिस्थिति में अर्जुन का विषादग्रस्त होना नितान्त स्वाभाविक ही है। अर्जुन महाभारत-कालीन योद्धाओं में सुप्रसिद्ध और परमवीर योद्धा था। वह इस प्रकार की सांसारिक परिस्थितियों में पड़ कर अपने कर्त्तव्य के विषय में संशय रखनेवाले मानव का प्रतिनिधित्व करता है। गीताज्ञान के वक्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे, जो कि योगेश्वर, जगद्गुरु और युगद्रष्टा महापुरुष थे। अर्जुन के सामने समस्या थी – युद्ध करूँ या न करूँ ? इस कठिन प्रश्न का समाधान करने में ही

गीता का आविर्भाव हुआ है । अतः गीता की उपदेश की पद्धति अत्यन्त सुस्पष्ट है; वह आचार-मीमांसा का प्रतिपादन करती है । इसलिये गीता को **'योगशास्त्र'** कहा जाता है । **'योग'** शब्द के अनेक अर्थ हैं जिसमें उसका एक अर्थ **'व्यवहार'** भी है । यहाँ भी योग से आशय **'व्यवहार'** या **'कर्ममार्ग'** है । गीता के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में **'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'** कहने का तात्पर्य भी यही है । इस प्रकार भगवद्गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मविद्या पर प्रतिष्ठित व्यवहार या कर्ममार्ग का उपदेश प्रदान करना है । किंकर्त्तव्यविमूढ अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा 'भगवद्गीता' के रूप में प्रदान किया गया वह उपदेश आज भी जनमानस को निरन्तर कर्त्तव्यपथ का बोध करा रहा है ।

1.2.1 महत्त्व

गीता यथार्थतः एक ऐसा सनातन धर्म-ग्रन्थ है, जिसमें सभी सम्प्रदायों की विचारधारा का समन्वयात्मक समावेश है । इसमें धर्म, दर्शन और नीति का अनुपम सङ्गम है । यह भारतीय अध्यात्मिक चिन्तन का प्राण है । इसकी महत्ता वर्णनातीत है । इसे सर्ववेदमयी कहा गया है – **'सर्ववेदमयी गीता'** । उपनिषद् वेद का अन्तिम भाग ज्ञानकाण्ड है । उन्हीं ज्ञानपरक उपनिषदों का सारतत्त्व गीता है । गीता के सन्दर्भ में कहा गया है –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।। (सङ्क्षिप्त महाभारत, प्रास्ताविक पृ. 16)

अर्थात् सभी उपनिषदें गाय हैं, दुहनेवाले श्रीकृष्ण हैं, अर्जुन बछड़ा है । श्रद्धालु विद्वान् भोक्ता है। यह गीतारूपी अमृत विलक्षण दूध है ।

गीता के महत्त्व का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने इसे अपना हृदय कहा है – **'गीता मे हृदयं पार्थ'** । गीता के सन्दर्भ में एक प्रचलित गाथा के अनुसार महर्षि व्यास ने अष्टादश पुराण, नौ व्याकरण तथा चारों वेदों का मन्थन कर महाभारत की रचना की । उस महाभारतरूपी सागर का मन्थन करने से गीता प्रकट हुई और उसी गीता का सार भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश के रूप में प्रदान किया । यथा –

अष्टादश पुराणानि नव व्याकरणानि च ।
निर्मथ्य चतुरो वेदान् मुनिना भारते कृतम् ।।

भारतोदधि निर्मथ्य गीता निर्मथितस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे धृतम् ।।

गीता की महनीयता का आकलन करने के लिए यही पद्य पर्याप्त है –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ।।

अर्थात् हमें अन्य शास्त्रों के अध्ययन की अपेक्षा साक्षात् भगवान् विष्णु के मुखकमल से निःसृत इस गीता का ही अध्ययन, चिन्तन और मनन करना चाहिए ।

गीता का प्रधान वैशिष्ट्य यह है कि वाक्यप्रमाण की अपेक्षा यह वैयक्तिक अनुभूति पर अधिक बल देती है । यह आत्मज्ञान के अनेक गूढ रहस्यों को सहजतया उद्घाटित करती है । इसके

चिन्तन से मानव का मन परिष्कृत हो जाता है। उसकी अन्तःप्रकृति परिवर्तित होकर अन्तर्मुख आयाम में लीन हो जाती है। साथ ही मानव सभी प्रकार के मोह, संशय और अवसाद से मुक्त होकर मानसिक शान्ति का अनुभव करता है। इस प्रकार गीता का उपदेश केवल तात्त्विक विचार परिवर्त्तनमात्र नहीं; इसका अभिप्राय मानवमात्र का आत्मोत्थान है।

1.2.2 नामकरण

'गीता' यह स्त्रीलिङ्ग शब्द भगवद्गीता के आधार पर ही प्रचलित हुआ है। वैसे 'गीत' शब्द संस्कृत में प्रायः नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होता है। **'गीतम्'** यही प्रयोग सामान्यतः प्राप्त होता है। यहाँ 'गीता' शब्द के स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग का अभिप्राय इस ग्रन्थ का पूर्ण नाम **'भगवद्गीतोपनिषद्'** है। गीता सभी उपनिषदों का सार है। सार होने के कारण इसका भी उपनिषद् नाम से व्यवहार प्रवृत्त हुआ। 'उपनिषद्' शब्द स्त्रीलिङ्ग है। उसका विशेषण होने से गीत शब्द भी स्त्रीलिङ्ग बना तथा गानकर्ता भगवान् के साथ जोड़कर 'भगवद्गीतोपनिषद्' यह पूर्ण नाम बना। भगवद्गीता की पुस्तकों में, पुष्पिका (अध्याय-समाप्ति) में ऐसा ही उल्लेख प्राप्त होता है – **"इति भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे"....।** भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत सी उपनिषदों का सार ग्रहण किया था। अतः 'भगवद्गीतासु उपनिषत्सु' यह बहुवचन प्रयोग प्रचलित हुआ। किन्तु व्यवहार में शनैः शनैः वे विशेषण-विशेष्य अप्रयुक्त हो गये तथा 'भगवद्गीता' या केवल 'गीता' यह सङ्क्षिप्त शब्दरूप ही व्यवहृत हुआ। स्त्रीलिङ्ग 'गीता' शब्द के प्रचलन का यही कारण था। फलतः परवर्ती उपदेशपरक ग्रन्थों के लिए भी स्त्रीलिङ्ग 'गीता' शब्द की परम्परा चल पड़ी। महाभारत तथा अन्य पुराणों में भी यह 'गीता' शब्द विभिन्न उपदेशप्रसङ्गों में प्रयुक्त हुआ है। हंसगीता, अनुगीता, पराशरगीता, पिङ्गलगीता, हारीतगीता, अवधूतगीता, ईश्वरगीता आदि बहुत सी गीताएँ महाभारत तथा पुराणों में उपलब्ध होती हैं। केवल महाभारत में ही भगवद्गीता के अतिरिक्त पन्द्रह गीताएँ प्राप्त होती हैं। इसी भगवद्गीता के नाम के अनुकरण के कारण पर वहाँ भी स्त्रीलिङ्ग प्रयुक्त हुआ है।

1.2.3 गीता तथा महाभारत

पाश्चात्य तथा आधुनिक भारतीय समीक्षक दोनों ही महाभारत को विकसनशील रचना मानते हैं। महाभारत का विकास क्रमशः **'जय'**, **'भारत'** तथा **'महाभारत'** इन तीन रूपों में विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पृथक्-पृथक् अवसरों पर हुआ। सङ्क्षेप में **महाभारत** के **विकास क्रम** को इस तालिका से समझा जा सकता है –

महाभारत का विकास क्रम					
क्र.	**ग्रन्थ का नाम**	**कर्ता**	**श्लोक**	**वक्ता तथा श्रोता**	**रचना का अवसर**
1.	जय	व्यास	8,800	व्यास-वैशम्पायन	धर्मचर्चा (बदरिकाश्रम)
2.	भारत	वैशम्पायन	24,000	वैशम्पायन-जनमेजय	जनमेजय का नागयज्ञ
3.	महाभारत	सौति	1,00,000	सौति-शौनकादि ऋषि	नैमिषारण्य में शौनक ऋषि के द्वारा अनुष्ठित द्वादश वार्षिक सत्र

परन्तु भारतीय परम्परागत विद्वान् इस मत से सहमत नहीं है। महाभारत के आदिपर्व (अ. 56. 52) तथा स्वर्गारोहणपर्व (अ. 5.49) में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् व्यास ने तीन वर्षों में

निरन्तर परिश्रम से महाभारत की रचना की। वस्तुतः 'जय' नाम महाभारत का ही है।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक ने 'गीतारहस्य' के बहिरङ्ग परीक्षा-प्रकरण में सप्रमाण सिद्ध किया है कि 'भगवद्गीता' महाभारत के प्रथम स्तर 'जय' में ही सम्मिलित थी। यदि महाभारत के तीन स्तर मान भी लिए जायें तो भी यह तथ्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि युद्ध के आरम्भ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया, उसी को महर्षि व्यास ने सङ्गृहीत किया है। महाभारत तथा गीता की अर्थसमानता के आधार पर लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक ने प्रतिपादित किया कि 'गीता' 'महाभारत' का ही एक भाग है तथा महर्षि व्यास ही महाभारत और गीता के रचयिता हैं । किन्तु वर्तमान में श्रीमद्भगवद्गीता अपनी सर्वव्यापकता, विषयगाम्भीर्य तथा लोकप्रियता के कारण महाभारत से पृथक् एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों समान रूप से समादृत है।

1.2.4 रचनाकाल

'भगवद्गीता' महाभारत के भीष्मपर्व ही एक अंश है। महाभारत में स्थान-स्थान पर गीता का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट सङ्केत मिलता है कि महाभारत के रचनाकाल से ही गीता को उसका एक वास्तविक भाग माना जाता रहा है। महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास महाभारत युद्ध समसामयिक थे। परन्तु इसके विरुद्ध कुछ विद्वानों की दृष्टि में महाभारत की रचना से बहुत पूर्व गीता की रचना हो चुकी थी। तदनन्तर आवश्यकतानुसार गीता को इसमें जोड़ दिया गया है । इस प्रकार के परस्पर विरोधी अनेक मत-मतान्तर गीता के रचनाकाल के सन्दर्भ में उपलब्ध हैं । विद्वानों के मध्य इस विषय पर लम्बा विवाद चलता आ रहा है । गीता के रचनाकाल के सन्दर्भ में उपलब्ध मत इस प्रकार हैं –

1. गीता के रचनाकाल के विषय में सर्वप्रथम श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग ने भगवद्गीता के अपने अनुवाद की भूमिका में प्रकाश डाला था। उन्होंने विदेशी विद्वान् डॉ. लॉरिन्सर के उस मत का प्रबल खण्डन किया जिसमें उसने अनेक युक्तियों से यह प्रामाणित करने की चेष्टा की है कि गीता की रचना बुद्ध के बाद 'न्यू टेस्टामेंट' के प्रभाव में ईसा के कई शताब्दी बाद हुई है। इस मत को उपहासास्पद प्रमाणित करते हुए तैलङ्ग ने स्पष्ट कर दिया है कि गीता में कहीं भी बौद्ध दर्शन की छाया भी नजर नहीं आती है। उनकी दृष्टि में बौद्ध दर्शन के पूर्व गीता अपने अस्तित्व में आ चुकी थी। इसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अनेक सशक्त उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि महाभारत की रचना आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (ईसापूर्व 3 शती) के पूर्व हो चुकी थी। अतः उसका अंश होने से गीता का रचनाकाल भी वही या उससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। उनके इस मत का समर्थन डॉ. आर.डी. भण्डारकर ने भी किया था । तैलङ्ग के मतानुसार गीता का रचनाकाल ईसापूर्व 3 शती से पूर्व है।
2. गीता के उपलब्ध सभी भाष्यों में 'शाङ्कर-भाष्य' सर्वाधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक है। आचार्य शङ्कर ने अपने भाष्यग्रन्थों में 'गीता' तथा 'महाभारत' के श्लोकों को प्रामाणिक रूप में उद्धृत किया है। शङ्कराचार्य का समय सामान्यतः (788-820 ई.) माना गया है। स्पष्टतः गीता का अस्तित्व आचार्य शङ्कर से बहुत पहले सिद्ध होता है।
3. विष्णुपुराण तथा पद्मपुराण आदि में भगवद्गीता के अनुकरण पर अन्य गीताएँ संकलित हैं। ऐसा तभी सम्भव है जब भगवद्गीता की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी हो। इन पुराणों का समय द्वितीय शती ईसा पूर्व के आसपास माना जाता है अतः इससे पूर्व गीता का निर्माण सिद्ध

होता है।

4. बौधायन गृह्यसूत्र में गीता के एक श्लोक को भगवद्वाक्य कहकर उद्धृत किया गया – "**तदाह भगवान्**

पत्रं पुष्पं फलं तो यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।"

बौधायन पितृमेधसूत्र में कहा गया है –

"यतस्य वै मनुष्यस्य ध्रुवं मरणमिति विजानीयात् तस्मात् जाते न प्रहष्येत मृते च न विषीदेत"।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ (गीता-2.27)

बौधायन का समय ईसापूर्व 4 शती है। अतः इससे पूर्व गीता तथा महाभारत का समय होना चाहिए।

5. भास के कर्णभार रूपक का एक श्लोक गीता के द्वितीय अध्याय के एक श्लोक से मिलता है। यथा –

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे॥ (कर्णभार, भास)

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥ (गीता-2.37)

महाकवि भास का समय चतुर्थ शती ईसापूर्व है। इस प्रकार 'कर्णभार' से ईसवी सन् के आरम्भ में महाभारत तथा गीता की सर्वमान्यता सिद्ध होती है।

6. गीता का संकेत महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में भी प्राप्त होता है। कालिदासकृत रघुवंश के दशम सर्ग का इकतीसवाँ श्लोक गीता के तीसरे अध्याय के बाईसवें श्लोक से सीधे मिलता है। बाणभट्ट ने भी गीता को सङ्केतित किया है। इस प्रकार कालिदास और बाणभट्ट भी गीता से परिचित थे।

7. जावा द्वीप की कवि भाषा में महाभारत का अनुवाद उपलब्ध है उसके भीष्मपर्व में लगभग सवा सौ श्लोक अक्षरशः मिलते हैं। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि 'गीता' के वर्तमान स्वरूप की रचना भीष्मपर्व के साथ हो चुकी थी।

8. वैदेशिक विद्वान् गार्बे गीता के प्रारम्भिक रूप का निर्माण-काल ईसा से दो सौ साल पूर्व तथा वर्तमान रूप का ईसा से दो सौ साल पश्चात् का मानते हैं। कीथ भी लगभग इसी मत को स्वीकार करते हैं। आर.डी. भाण्डारकर गीता का रचनाकाल ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी मानते हैं।

9. लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीतारहस्य' में गीता को भागवत सम्प्रदाय का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य माना है। साथ ही उन्होंने भागवत धर्म के प्राचीन समय को सेनार्ट

(इण्डियन इनटरप्रेटर, अक्टूबर 1909 और जनवरी 1910) तथा ब्यूहलर (इण्डियन एन्टीक्वीटी 1894) द्वारा स्वीकृत किया जाने को भी उद्धृत किया है।

10. डॉ. राधाकृष्णन् ने अनेक मत-मतान्तरों की गम्भीर समीक्षा कर गीता का रचनाकाल ईसापूर्व पञ्चम शताब्दी निश्चित किया है।

उपर्युक्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि बौधायन से लेकर आचार्य शङ्कर तक महाभारत तथा गीता का अस्तित्व अविच्छिन्नरूप से बना हुआ था। अतः इन सारे तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने से निश्चय ही गीता का रचनाकाल ईसापूर्व 500 वर्ष स्वीकार किया जा सकता है। इसी मत को अधिसङ्ख्य भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।

जहाँ तक गीता रचना के मास तथा तिथि का प्रश्न है भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को **'गीता जयन्ती'** मनाने की परम्परा चली आ रही है। महाभारत का युद्ध मार्गशीर्ष मास में हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर दीपावली के आसपास कौरव सभा में गये थे तथा उनके असफल होकर लौटने पर युद्ध हुआ था। पितामह भीष्म ने शरशय्या पर अन्तिम समय में युधिष्ठिर से कहा था –

अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याय मे गतः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा॥

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सोम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति॥ (महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय 167)

अर्थात् मुझे शरशय्या पर पड़े अट्ठावन दिन हो गये हैं तथा अब माघ मास का शुक्ल पक्ष आ गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि भीष्म के शरशय्याग्रहण के समय सूर्य दक्षिणायन थे इसीलिए भीष्म उत्तरायण सूर्य में प्राणत्याग का निश्चय कर शरशय्या पर गये थे। उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर महाभारत युद्ध मार्गशीर्ष में तथा गीता रचना का समय मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी सिद्ध होती है।

1.2.5 विषयवस्तु

गीता के एकादश अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट् रूप का दर्शन कराया था। यही विराट् रूपधारी नारायण ब्रह्म हैं। गीता का उद्देश्य भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि श्रीनारायण ब्रह्म हैं। अनन्य एवं शरणापन्न भक्त इन्हें निष्ठा, निष्काम-कर्म, वैराग्य, यथार्थ-ज्ञान एवं स्वधर्मरूपी साधनसहित प्रपन्नभक्ति से प्राप्त कर सकते हैं। गीता के प्रथम छः अध्यायों में आत्मा - अनात्मा तथा ब्रह्म का ज्ञान कराया गया है। अध्याय सात से बारह तक ज्ञान एवं कर्म द्वारा भक्तियोग की प्राप्ति का वर्णन है। ईश्वर के यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि केवल ऐसे भक्तियोग से ही सम्भव बतलायी गयी है। इसके उपरान्त अध्याय तेरह से अट्ठारह तक भक्ति, ज्ञान एवं कर्मसहित पुरुषोत्तम, पुरुष तथा प्रधान के स्वरूप का अन्तर आदि का विवेचन किया गया है। गीता के अध्याय-क्रमानुसार विषयवस्तु का विवरण इस प्रकार है –

1. **प्रथम अध्याय : 'अर्जुनविषाद'** नामक प्रथम अध्याय (श्लोक 47) में रणभूमि में दोनों पक्षों में खड़े युद्धोन्मुख स्वजनों को देखकर अर्जुन का विषादग्रस्त होना, कुलक्षय की चिन्ता से आकुल अर्जुन का युद्ध न करने का निश्चय करना तथा अन्त में गाण्डीव त्याग कर रथ में बैठ जाने का वर्णन है।

2. **द्वितीय अध्याय** : **'साङ्ख्य-योग'** नामक द्वितीय अध्याय (श्लोक 72) में मोहग्रस्त अर्जुन को उपदेश देने के क्रम में श्रीकृष्ण द्वारा शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मसम्पादन तथा स्थितप्रज्ञता वर्णित है।

3. **तृतीय अध्याय : 'कर्मयोग'** नामक तृतीय अध्याय (श्लोक 43) में विविध कर्म तथा उनके महत्त्व का निरूपण, अनासक्त भाव से कर्म करने का निर्देश तथा अर्जुन की पापकर्म में प्रवृत्तिविषयक जिज्ञासा का श्रीकृष्ण द्वारा समाधान वर्णित है।

4. **चतुर्थ अध्याय : 'ज्ञानकर्मसंन्यासयोग'** नामक चतुर्थ अध्याय (श्लोक 42) में योग-ज्ञान की परम्परा, गुण तथा कर्म के आधार पर चातुर्वर्ण्य का कथन, कर्म तथा अकर्म का भेदनिरूपण, यज्ञों के विविध स्वरूपों का प्रतिपादन तथा श्रद्धालु के लिए ज्ञानप्राप्ति का वर्णन है।

5. **पञ्चम अध्याय : 'कर्मसंन्यासयोग'** नामक पञ्चम अध्याय (श्लोक 29) में कर्मसंन्यास की अपेक्षा कर्मयोग की श्रेष्ठता, कर्मफलत्याग की अनिवार्यता, सभी प्राणियों में समबुद्धि तथा परमात्मचिन्तन द्वारा सुख की प्राप्ति वर्णित है।

6. **षष्ठ अध्याय : 'आत्मसंयमयोग'** नामक षष्ठ अध्याय (श्लोक 47) में संन्यास तथा योग की एकरूपता, सर्वसंकल्पत्याग से योगप्राप्ति, योगसाधना की उचित विधि तथा श्रेष्ठ योगी का लक्षण वर्णित है।

7. **सप्तम अध्याय : 'ज्ञानविज्ञानयोग'** नामक सप्तम अध्याय (श्लोक 30) में अष्ट भेदात्मिका जड़प्रकृति, संसारधारिका चेतन प्रकृति, जगदुत्पत्ति में ईश्वर की मूलकारणता तथा त्रिगुणात्मिका माया का निरूपण है।

8. **अष्टम अध्याय : 'अक्षरब्रह्मयोग'** नामक अष्टम अध्याय (श्लोक 28) में ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधियज्ञ तथा ईश्वर-ज्ञान के उपाय का वर्णन है।

9. **नवम अध्याय : 'राजविद्याराजगुह्ययोग'** नामक अष्टम अध्याय (श्लोक 34) में श्रीकृष्ण ने अपने परम भाव तथा सृष्टि का वर्णन करके प्राणिमात्र के लिए अनन्य भक्ति तथा शरणागति का उपदेश दिया है।

10. **दशम अध्याय : 'विभूतियोग'** नामक दशम अध्याय (श्लोक 42) में श्रीकृष्ण द्वारा अपने को सबका मूल कारण बताना, अर्जुन द्वारा उन्हें परम तत्त्व स्वीकारना तथा अन्त में श्रीकृष्ण द्वारा अपनी विभूतियों का ख्यापन वर्णित है।

11. **एकादश अध्याय : 'विश्वरूपदर्शनयोग'** नामक एकादश अध्याय (श्लोक 55) में अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा अपने विराट् रूप का दर्शन कराना, अर्जुन द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति तथा पुनः श्रीकृष्ण का स्वस्वरूप धरण वर्णित है।

12. **द्वादश अध्याय : 'भक्तियोग'** नामक द्वादश अध्याय (श्लोक 20) में साकार तथा निराकार ब्रह्मोपासकों की श्रेष्ठताविषयक अर्जुन की जिज्ञासा का समाधान तथा भक्ति का वर्णन किया गया है।

13. **त्रयोदश अध्याय : 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग'** नामक त्रयोदश अध्याय (श्लोक 34) में क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (जीव) का वर्णन, ज्ञान तथा अज्ञान का निरुपण तथा आत्मा की एकता का वर्णन है ।

14. **चतुर्दश अध्याय : 'गुणत्रयविभागयोग'** नामक चतुर्दश अध्याय (श्लोक 27) में प्रकृतिजन्य तीनों गुणों- सत्त्व, रज, तमस् के स्वरूप एवं प्रवृत्ति का वर्णन, त्रिगुणातीत पुरुष की स्वरूप तथा आवरण का वर्णन किया गया है।

15. **पञ्चदश अध्याय : 'पुरुषोत्तमयोग'** नामक पञ्चदश अध्याय (श्लोक 20) में अविनाशी संसारवृक्ष का निरूपण, प्राप्ति का उपाय वर्णन तथा संशयरहित ज्ञानी पुरुष द्वारा पुरुषोत्तम का भजन वर्णित है।

16. **षोडश अध्याय : 'दैवासुरसम्पद्विभागयोग'** नामक षोडश अध्याय (श्लोक 24) में मनुष्य की देवी एवं आसुरी सम्पत्तियों, इनके फल तथा शास्त्रविधि से ही कर्म करने की श्रेयस्करता का वर्णन है।

17. **सप्तदश अध्याय : 'श्रद्धात्रयविभागयोग'** नामक सप्तदश अध्याय (श्लोक 28) में विविध सात्विकी राजसी, तामसी श्रद्धा तथा उनके फल का, यज्ञ, तप तथा दान की विविधता तथा उनके फल का वर्णन किया गया है।

18. **अष्टादश अध्याय : 'मोक्षसंन्यासयोग'** नामक अष्टादश अध्याय (श्लोक 78) में संन्यास तथा त्याग का सविस्तर वर्णन, त्यागी का लक्षण, सहज कर्म के त्याग का निषेध, सुख की त्रिविधता, समबुद्धिरूप योग का आलम्बन करने, कर्त्तव्य का अहङ्कार न करने का उपदेश देकर भगवत् शरण में आने का निर्देश तथा अन्त में अर्जुन द्वारा अनन्य शरणागत होकर कृष्ण के उपदेश से युद्ध करने के निश्चय का वर्णन है।

1.2.6 श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्यकार एवं टीकाकार

सनातन धर्म-दर्शन में 'प्रस्थानत्रयी' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्थानत्रयी में परिगणित उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र ही धार्मिक एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के लिए मुख्य आधार हैं। उसमें भी 'गीता' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकालिक सभी धार्मिक सम्प्रदाय प्रवर्त्तक आचायों में शङ्कराचार्य , रामानुजाचार्य , निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य तथा रामानन्दाचार्य इन छः आचार्यों ने अपने मतानुसार गीता पर गम्भीर भाष्यों का लेखन किया है। इन सभी ने अपने सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए गीता के नीति-निर्देशों के अनुसार ही अपने मतों का उपस्थापन भी किया। इन दार्शनिक आचार्यों के अतिरिक्त अन्य मध्यकालीन तथा आधुनिक आचायों तथा मनीषियों ने भी गीता की टीकाएँ लिखी हैं जिनमें प्रमुख हैं – शङ्करानन्दकृत 'गीतातात्पर्यबोधिनी', श्रीधरकृत 'सुबोधिनी' , मधुसूदनसरस्वतीकृत 'गूढार्थदीपिका', नीलकण्ठकृत 'भावप्रदीप', अभिनवगुप्तकृत 'गीतार्थसङ्ग्रह', केशव काश्मीरीकृत गीताभाष्य (तत्त्वप्रकाशिका), विट्ठलेशकृत 'गीतातात्पर्यनिर्णय', गोस्वामी पुरुषोत्तमकृत 'गीतामृततरङ्गिणी', विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत 'सारार्थवर्षिणी', रामकण्ठकृत 'सर्वतोभद्र', बलदेव विद्याभूषणकृत 'गीतामृतभूषण', सन्त ज्ञानेश्वरकृत 'ज्ञानेश्वरी' (मराठी भाषा में), धर्मदत्त ऊर्फ़ बच्चा झा कृत गूढार्थतत्त्वालोक (मधुसूदनीटीका पर), लोकमान्य तिलककृत 'गीतारहस्य, योगी अरविन्द तथा विनोबा भावे की टीकाएँ आदि।

अभ्यास प्रश्न : 1

1. श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का अंश है – यह कथन है ?

   क. सत्य

ख. असत्य

2. श्रीमद्भगवद्गीता की गणना 'प्रस्थानत्रयी' में होती है ?

क. सत्य

ख. असत्य

3. भगवद्गीता महाभारत के किस पर्व में वर्णित है ?

क. अनुशासन पर्व

ख. आश्वमेधिक पर्व

ग. आश्रमवासिक पर्व

घ. भीष्म पर्व

4. श्रीमद्भगवद्गीता में कितने अध्याय हैं ?

क. 4

ख. 6

ग. 7

घ. 18

5. भगवद्गीता में कितने श्लोक हैं ?

क. 700

ख. 335

ग. 1100

घ. 500

6. श्रीमद्भगवद्गीता के प्राचीनतम भाष्यकार कौन हैं ?

क. रामानुजाचार्य

ख. रामानन्दाचार्य

ग. लोकमान्य तिलक

घ. शङ्कराचार्य

7. 'गीतारहस्य' के लेखक कौन हैं ?

क. शङ्कराचार्य

ख. रामानुजाचार्य

ग. रामानन्दाचार्य

घ. लोकमान्य तिलक

8. 'गीतार्थसङ्ग्रह' के लेखक कौन हैं ?

क. शङ्कराचार्य

ख. रामानुजाचार्य

ग. रामानन्दाचार्य

घ. अभिनवगुप्तपादाचार्य

9. गीता के द्वितीय अध्याय का नाम है ?

क. विभूतियोग

ख. भक्तियोग

ग. साङ्ख्ययोग

घ. विश्वरूपदर्शनयोग

10. गीता का एकादश अध्याय है ?

क. विभूतियोग

ख. भक्तियोग

ग. साङ्ख्ययोग

घ. विश्वरूपदर्शनयोग

1.3 श्रीमद्भगवद्गीता का तात्पर्य

श्रीमद्भगवद्गीता का यथार्थ तात्पर्य जानने के लिएहमें उन आचायों तथा पण्डितों के ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए, जिन्होंने गीता के तात्पर्य का विशद विवेचन किया है। साथ ही इस हेतु गीता के विषय-विभाग को समझना भी आवश्यक है। प्राचीन दार्शनिक सम्प्रदायों के प्रायः सभी व्याख्याकारों ने अपने अपने दृष्टिकोण से अष्टादश अध्यायों के विषय-विभाग का निरूपण किया है। यहाँ भगवद्गीता के तात्पर्य के सन्दर्भ में उपलब्ध प्रमुख मतों का निरूपण किया जा रहा है –

1.3.1 महर्षि व्यास का दृष्टिकोण

गीता मनीषियों में महाभारत के कर्ता महर्षि व्यास ही अग्रगण्य हैं। अतः सर्वप्रथम उन्हीं के मतानुसार संक्षेप में गीता के तात्पर्य को ही निरूपित करते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में आये हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि गीताधर्म तथा भागवतधर्म दोनों एक ही - क्योंकि नारायणीय अथवा भागवतधर्म के निरूपण में वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा है कि यही भागवतधर्म सङ्क्षिप्त रीति से भगवद्गीता में पहले ही बताया गया है। आगे यह भी कहा गया है कि कौरव पाण्डव युद्ध के समय जब अर्जुन उद्विग्न हो गया था, तब स्वयं भगवान् ने यह उपदेश अर्जुन को दिया था। यहाँ यह ध्यान में योग्य है कि जिस भागवतधर्म के विषय में दो बार कहा गया है, वही वस्तुतः गीता का प्रतिपाद्य विषय है। उसी को 'सात्वत' या 'एकान्तिक' धर्म भी कहा गया है। इसका विवेचन करते समय दो लक्षण दिये गये हैं –

नारायणापरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः।
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः॥ (महाभारत शान्तिपर्व 347.80-81)

अर्थात् यह नारायणीय धर्म प्रवृत्तिमार्ग का होकर भी पुनर्जन्म को टालनेवाला है अर्थात् पूर्णमोक्ष का दाता है। यहाँ प्रवृत्ति का अर्थ है कर्मसंन्यास न लेकर मरण पर्यन्त चातुर्वर्ण्यविहित

निष्काम कर्म करना चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि गीता में जो उपदेश अर्जुन को किया गया है, वह भागवतधर्म का ही है तथा उसको महाभारतकार प्रवृत्तिविषयक ही मानते हैं, क्योंकि उपर्युक्त धर्म भी प्रवृत्तिविषयक ही है।

सारांश यह है कि महाभारत में उल्लिखित वचनों का यही अभिप्राय है कि गीता में अर्जुन को जो उपदेश किया था, वह विशेषकर मनु-इक्ष्वाकु इत्यादि परम्परा से चले आये प्रवृत्तिविषयक भागवतधर्म का ही है तथा उसमें निवृत्तिविषयक यतिधर्म का जो निरूपण पाया जाता है, वह केवल आनुषंगिक है।

1.3.2 शङ्कराचार्य का दृष्टिकोण

आचार्य शङ्कर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार गीता के विषय-विभाग के सम्बन्ध में दो प्रधान मत उपलब्ध हैं। **प्रथम मत :** कर्म-उपासना-ज्ञानप्रधान तथा **द्वितीय मत :** जीव-ब्रह्मैक्यप्रधान। जिसमें प्रथम प्रकार के विषय-विभाग में मनुष्य के कल्याण के लिए आवश्यक कर्म, भक्ति (उपासना) तथा ज्ञान – इन तीन उपायों को गीता का प्रतिपाद्य माना गया है। तदनुसार गीता को तीन षट्कों में विभक्त किया गया है। गीता के 'पूर्वषट्क' (अध्याय 1-6) में 'कर्म' का मुख्य रूप से विवेचन है तथा उसी में 'कर्मयोग' का निरूपण है। 'मध्यषट्क' (अध्याय 7-12) में उपासना का विवेचन है जिसमें उपास्य ईश्वर तथा उपासना प्रकारों का वर्णन है। 'अन्तिमषट्क' (अध्याय 13-18) ज्ञानप्रधान है। उसमें ज्ञान का उपदेश है तथा उसी में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का स्वरूप, जीव-ईश्वर का सम्बन्ध, जीव की बन्धक प्रकृति का वर्णन है। जीव-ब्रह्मैक्यप्रधानरूप द्वितीय प्रकार के विषय-विभाग में यह प्रतिपादित किया गया है कि गीता उपनिषदों का सार है तथा उपनिषदों में जीवब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादक **'तत्त्वमसि'** यह महावाक्य प्रधान है। इसमें तीन पद हैं – 'तत्', 'त्वम्', 'असि'। इनमें **'तत्'** का अर्थ **'परब्रह्म'** है, **'त्वम्'** का अर्थ **'जीव'** तथा **'असि'** पद **'जीव-ब्रह्मैक्य'** का प्रतिपादक है। इन्हीं तीनों पदों के अर्थों का विवेचन गीता के छः अध्यायों के तीन षट्कों में किया गया है। गीता के 'प्रथमषट्क' (अध्याय 1-6) में 'त्वम्' पद के जीव रूपी अर्थ का निरूपण किया गया है। 'द्वितीयषट्क' (अध्याय 7-12) में 'तत्' पद के ईश्वर रूपी अर्थ का निरूपण किया गया है। ईश्वरविभूति, विश्वरूपदर्शन आदि ईश्वर तत्त्व के प्रतिपादक विषय भी उसी के अन्तर्गत आते हैं। भक्ति भी ईश्वर से सम्बद्ध है अतः द्वादश अध्याय में भक्तितत्त्व का निरूपण है। 'अन्तिमषट्क' (अध्याय 13-18) में जीव तथा ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि महावाक्य के क्रमानुसार पहले 'तत्' पदार्थ परब्रह्म का निरूपण प्रसङ्ग प्राप्त था किन्तु जीव स्वस्वरूप के ज्ञान के बिना परब्रह्म को नहीं जाना जा सकता अतः महावाक्य के पदों का क्रम परिवर्तित करके 'त्व' पदार्थ जीव का निरूपण प्रथमतया किया गया है। वस्तुतः जीव-ब्रह्म की एकता ही अन्तिम षट्क का अर्थ है तथा यही गीता का मुख्य प्रतिपाद्य है। इस प्रकार गीता में क्रमशः कर्म, भक्ति तथा ज्ञान तीनों का प्रतिपादन हुआ है।

गीता के भाष्यकारों तथा गीता के टीकाकारों ने गीता का क्या तात्पर्य निश्चित किया है। इन भाष्यों तथा टीकाओं में आद्यशङ्कराचार्य कृत गीताभाष्य अतिप्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। यद्यपि इसके पूर्व गीता पर अनेक भाष्य तथा टीकाएँ लिखीं जा चुकी थीं, किन्तु वे आज उपलब्ध नहीं हैं। इसीलिए यह ज्ञात नहीं हो सकता कि महाभारत के रचनाकाल से शंकराचार्य के समय तक गीता का अर्थ किस प्रकार किया जाता था, तथापि शाङ्करभाष्य में ही इन प्राचीन टीकाओं के मतों का जो उल्लेख है , उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि शङ्कराचार्य के

पूर्वकालीन टीकाकार गीता का अर्थ महाभारत के कर्ता के अनुसार ही ज्ञानकर्मसमुच्चयात्मक किया करते थे, किं बहुना प्रवृत्ति-विषयक अर्थ किया जाता था। अर्थात् ज्ञानी मनुष्य को ज्ञान के साथ-साथ मृत्युपर्यन्त स्वधर्मविहित कर्म करना चाहिए। परन्तु वैदिक कर्मयोग का सिद्धान्त शङ्कराचार्य को मान्य नहीं था। इसीलिए उसका खण्डन करने तथा अपने मत के गीता का तात्पर्य बनाने के लिए ही उन्होंने गीताभाष्य की रचना की है। यह बात उक्तभाष्य के आरम्भ के उपोद्घात में स्पष्ट रीति से कही गयी है। शङ्कराचार्य अलौकिक मूर्धन्य विद्वान् थे। उन्होंने अपनी दिव्य अलौकिक शक्ति से उस समय चारों ओर फैले हुए नास्तिक मतों का खण्डन किया। श्रुति-स्मृति-विहित वैदिकधर्म की रक्षा के लिए भारत की चारों दिशाओं में चार मठों स्थापना की। प्राचीन वैदिकधर्म के जिस विशिष्ट मार्ग को श्रेष्ठ बताकर उन्होंने स्थापित किया, उसी के अनुकूल गीता का भी अर्थ है। उन्होंने पूर्ववर्ती टीकाकारों द्वारा प्रतिपादित गीता के ज्ञान तथा कर्म के समुच्चयात्मक तात्पर्य को अस्वीकार किया। शाङ्करमतानुसार कर्म ज्ञानप्राप्ति का गौणसाधन है तथा कर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शङ्कराचार्य की दृष्टि में गीता का तात्पर्य प्रवृत्तिविषयक न होकर निवृत्तिविषयक ही है।

शङ्कराचार्य के गीताभाष्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

1. गीताशास्त्र सम्पूर्ण वेदार्थ का सारसंग्रह है। गीताशास्त्र का अर्थ जान लेने पर सभी पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।
2. वेदोक्त धर्म दो प्रकार का है – प्रवृत्तिरूप धर्म जिसे **'कर्मयोग'** कहा जाता है और निवृत्तिरूप धर्म जिसे **'ज्ञानयोग'** की संज्ञा दी जाती है। कर्मयोग उपाय है और ज्ञानयोग उपेय है। कर्मयोग से अन्तःकरण शुद्ध होता है। इससे ज्ञाननिष्ठा की योग्यता प्राप्त- होती है। आत्मशुद्धि के लिए निष्कामभाव से कर्म करना चाहिए अथवा ब्रह्म को कर्मफल अर्पित करके कर्म करना चाहिए। कर्मफल का त्याग ही संन्यास का लक्षण है। संन्यास ज्ञान का लक्षण है।
3. गीताशास्त्र का निश्चय है कि केवल तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष मिलता है, कर्मसहित ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता। इस प्रकार गीताशास्त्र में ज्ञानमार्ग का निरूपण किया गया है। इसी को ज्ञाननिष्ठा कहा गया है। ज्ञानमार्ग से कर्ममार्ग तथा भक्तिमार्ग का सहसमुच्चय नहीं हो - सकता।
4. मोक्ष अकार्य है। अतः वह किसी कर्म से साध्य नहीं है। वह स्वतः सिद्ध है। वह उत्पाद्य, संस्कार्य, विकार्य और आप्य नहीं है।
5. कर्म अविद्यापूर्वक हैं। उनका नाश विद्या या ज्ञान से होता है। ज्ञान से प्रारम्भ, क्रियमाण और सञ्चित कर्मों का नाश हो जाता है।
6. जीव का कर्तापन गौण है। भ्रान्ति अथवा अविद्या के कारण जीव अपने को कर्ता, भोक्ता आदि समझता है। अविद्यानिवृत्ति होने पर जीव को आत्मबोध होता है वह अजर और - अमरहै। उसके जन्म, मरण, दुःख, सभी व्यवहार अविद्या निमित्तिक हैं।
7. बुद्धि आत्माकार का आभास है। बुद्धि का आभास मन है मन के आभास इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों का आभास स्थूल शरीर है। इस प्रकार आभासवाद परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध की व्याख्या करता है।
8. द्वैतवादियों के अनुसार जैसे बन्धनअवस्था में ही शास्त्र आदि प्रमाणों तथा कर्मों की -

सार्थकता है, मुक्तअवस्था में नहीं-, वैसे ही अद्वैतवाद में भी जीवों की ईश्वर के साथ एकता हो जाने पर शास्त्र आदि प्रमाणों तथा कर्मों की व्यर्थता होती है। उनकी सार्थकता अविद्या अवस्था में ही है। इस प्रकार गीताशास्त्र में अद्वैतवाद और द्वैतवाद का समन्वय किया गया है।

9. अध्यारोप और अपवाद की विधि से आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। लोकमत, वैशेषिक, साङ्ख्य, बौद्ध, जैन आदि दर्शनों में जो आत्मविवेचन है उसको भाष्यकार ने निरस्त किया है और **'अयम् आत्मा ब्रह्म'** अथवा **'साक्षात् अपरोक्षात् ब्रह्म'** के रूप में आत्मा को सिद्ध किया है।

1.3.3 अभिनवगुप्तपादाचार्य का दृष्टिकोण

अद्वैत तथा वैष्णव सम्प्रदायों के अतिरिक्त शैव तथा शाक्तों के भी अनेक सम्प्रदाय हैं। आचार्य अभिनवगुप्त का सिद्धान्त आगम (तन्त्र) शास्त्र के आधार पर प्रतिष्ठित है तथा इनका दर्शन **'प्रत्यभिज्ञादर्शन'** के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने परशिव को ही मुख्य तत्त्व स्वीकारा है अतः इसे **'शैवदर्शन'** भी कहा जाता है। अभिनवगुप्त मुख्यतः अद्वैत मत के समर्थक हैं किन्तु आचार्य शङ्कर के अद्वैत से अभिनवगुप्त के अद्वैत में यह भिन्नता है कि ये जगत् को मिथ्या नहीं मानते। अभिनवगुप्त मूलतत्त्व परम शिव में एक नित्य स्वातन्त्र्य शक्ति मानते हैं जिसके कारण वह परम तत्त्व ही स्वतः जगद्रूप में परिणत हो जाता है। इस मत में मुक्ति परम शिव के प्रसाद से मिलती है। जब जीव को यह प्रत्यभिज्ञा हो जाती है कि मैं शिव ही हूँ तब वह मुक्त हो जाता है। इसी प्रत्यभिज्ञा में कर्म, भक्ति, ज्ञान आदि का उपयोग है। अभिनवगुप्त की गीता पर एक सङ्क्षिप्त व्याख्या उपलब्ध है। जिसका नाम **'गीतार्थसङ्ग्रह'** है। उन्होंने स्पष्टतः प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय के अनुकूल ही गीता की व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने ज्ञान एवं कर्म की परस्पर सम्बद्धता को स्वीकारा है। परम तत्त्व ही कल्याणकारक होने से शिव तथा आकर्षक होने से कृष्ण कहलाता है।

1.3.4 रामानुजाचार्य का दृष्टिकोण

शङ्कराचार्य के उपरान्त विभिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के विचारानुसार गीता तथा प्रस्थानत्रयी के अन्य ग्रन्थों पर भाष्य लिखे। शाङ्करसम्प्रदाय के अनन्तर, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। रामानुजाचार्य के परमगुरु यामुनाचार्य हैं। इन्हीं की प्रेरणा से आचार्य रामानुज ने वैष्णवमत में दीक्षित होकर शेष जीवन भगवद्भक्ति तथा अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में लगाया। यामुनाचार्य के ग्रन्थों में प्रमुख है **'गीतार्थसङ्ग्रह'**। इसमें मात्र बत्तीस श्लोक हैं जो भगवद्गीता की सङ्क्षिप्त टीका या तात्पर्य है। गीता के प्रत्येक अध्याय के प्रतिपाद्य को एक-एक श्लोक के माध्यम से यहाँ प्रस्तुत करने का अद्भुत प्रयास किया गया है। यह अपनी प्रकृति का अद्भुत गीताभाष्य है। उसमें गीता का विषय-विभाग इस प्रकार है – ज्ञान तथा कर्म दोनों के सम्मिलित रूप से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है। गीता का मुख्य प्रतिपाद्य ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद है। गीता के उपसंहार में भी शरणागति की ही प्रमुखता दर्शायी गयी है। अतः गीता का मुख्य प्रतिपाद्य भगवद्भक्ति तथा शरणागति ही है। कर्म और ज्ञान भक्ति के सहकारी हैं। यही सिद्धान्त रामानुजाचार्य को भी मान्य है।

आचार्य रामानुज ने गीताभाष्य में अपने भक्ति एवं प्रपत्ति (शरणागति) के सिद्धान्त का बड़ी सफलता से निरूपण किया है। गीता की पृष्ठभूमि भक्तिसिद्धान्त का प्रतिपादन करने में अधिक

उपादेय सिद्ध हुई है। वे भक्ति के सिद्धान्त को उपनिषत्समर्थित मानते हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि वेदान्तोदित भक्तियोग को प्रतिष्ठित करने के लिएही गीता की रचना हुई है। कुछ शास्त्रकारों ने गीता दर्शन में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु रामानुजाचार्य के मतानुसार गीता का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति ही है, कर्म और ज्ञान तो भक्ति के सहकारी कारण हैं। भक्तियोग के सिद्धान्त का जहाँ एक ओर आभिजात्य एवं बौद्धिक वर्ग की ज्ञान-पिपासा शान्त करने में सफल हुआ है, वहीं दूसरी ओर वह जनसामान्य की धार्मिक भावनाओं और मान्यताओं को भी पूरा करता है। साथ ही उन्होंने शरणागति या प्रपत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके समाज में समरसता स्थापित करने का भी सार्थक प्रयास किया।

1.3.5 मध्वाचार्य का दृष्टिकोण

रामानुज सम्प्रदाय के अनन्तर वैष्णव 'द्वैतसम्प्रदाय' का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रवर्तक मध्वाचार्य थे। गीता पर इनके दो भाष्य हैं – **1. गीताभाष्य** तथा 2. **गीता-तात्पर्यनिर्णय**। मध्वाचार्य ईश्वर तथा जगत् को सर्वथा भिन्न मानते हैं। उनके मत में ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। जीव भी ईश्वर से सर्वथा भिन्न है। बन्ध तथा मोक्ष दोनों जीव की अवस्थाएँ हैं। इनके मत में भी रामानुज की भाँति मुक्ति का कारण ज्ञान-कर्मसमुच्चय है। उन्होंने गीता के अपने भाष्य में यह प्रतिपादित किया कि यद्यपि गीता में निष्काम कर्म के महत्त्व का वर्णन है, तथापि वह साधन है तथा भक्ति ही अन्तिम निष्ठा है । इस मत में भी ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की प्रमुखता है।

1.3.6 निम्बार्काचार्य का दृष्टिकोण

निम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित एक और वैष्णव सम्प्रदाय है, जिसमें राधाकृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया गया है। इस सम्प्रदाय को **'द्वैताद्वैत'** कहते हैं। उनका मत है कि सृष्टि से पूर्व ब्रह्म एक ही रहता है किन्तु सृष्टि के बाद वह द्वैत हो जाता है। ब्रह्म का उत्पत्ति-विनाश कभी नहीं होता। मुक्ति की प्राप्ति के लिए ज्ञान-कर्म समुच्चय के साथ भक्ति की प्रधानता निम्बार्क भी स्वीकार करते हैं। निम्बार्क रचित **'भगवदगीता-वाक्यार्थ'** नामक ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इस मत के अनुयायी केशव काश्मीरी ने गीता की **'तत्त्वप्रकाशिका'** टीका में स्थान-स्थान पर शङ्कराचार्य के मत का अनुगमन करके भी सिद्धान्तरूप से भक्ति को ही प्रधानता दी है।

1.3.7 वल्लभाचार्य का दृष्टिकोण

वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवादी वैष्णव आचार्य हैं। इनके सिद्धान्तानुसार ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत् का मूल है किन्तु ये जगत् को मिथ्या नहीं मानते। इनके अनुसार परब्रह्म अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति से अपने भीतर ही जगत् को उत्पन्न करता तथा समय पर स्वयं में लीन कर लेता है। माया-प्रकृति आदि परब्रह्म की भिन्न-भिन्न शक्ति है जो ब्रह्म से ही प्रकट होती है। अणुरूप जीव भी ब्रह्म से ही प्रकट होता है। जीव अग्नि के स्फुलिंगों के समान ईश्वर के अंश हैं। मायाधीन जीव को ईश्वर की कृपा के बिना मोक्षज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए मोक्ष का मुख्यसाधन भगवद्भक्ति ही है। ये परमेश्वर के अनुग्रह को **'पुष्टि'** कहते हैं। अतः यह सम्प्रदाय **'पुष्टिमार्ग'** के नाम से प्रसिद्ध है। जीव की मुक्ति का कारण केवल भगवान् का अनुग्रह है। जीव का मुख्य कर्त्तव्य भगवद्भक्ति है। इनके अनुसार भगवद्भक्ति ही गीता का प्रधान तात्पर्य है।

1.3.8 रामानन्दाचार्य का दृष्टिकोण

विशिष्टाद्वैतमत के अनुयायियों में रामानन्द स्वामी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने रामानुजमत का ही समर्थन किया है। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद 'लक्ष्मीनारायणवाद' है और रामानन्द का विशिष्टाद्वैतवाद 'सीतारामवाद' है। मन्त्र, उपास्य और उपासना के भेद से दोनों दर्शनों में भेद है। रामानन्दाचार्य ने गीता पर **'आनन्द'** नामक भाष्य का लेखन किया है। उन्होंने गीताशास्त्र को अध्यात्मविद्या-प्रधान कहा। गीता के द्वारा परम कारुणिक भगवान् देवकीनन्दन ने अर्जुन को उपदेश देने के व्याज से अपने सभी भक्तों के उद्धार का मार्ग प्रदर्शित किया है। भगवान् देवकीनन्दन कृष्ण आदि पुरुष साकेताधिपति भगवान् श्रीराम के अवतार हैं। प्रथम षट्क (1-6 अध्याय) में ज्ञान-गर्भित कर्मयोग का प्रतिपादन है जो परा भक्ति का उदय है। उसका प्रयोजन अक्षरतत्त्व का यथार्थ ज्ञान प्रदान करना है। द्वितीय षट्क (7-12 अध्याय) में सपरिकर भक्तियोग का वर्णन है। इन दोनों षट्कों में निखिल अध्यात्मशास्त्र का प्रतिपादन हो गया है। किन्तु उनमें निर्दिष्ट पदार्थों का संशोधन करना तृतीय षट्क (13-18 अध्याय) का कार्य है। रामानन्दाचार्य 'प्रपत्तिषट्क'(अहिर्बुध्न्यसंहिता के अनुसार) अर्थात् छः प्रकार की शरणागति के सिद्धान्त मानते हैं। साथ ही वे भक्तियोग (प्रपत्तियोग) को ही भगवत्प्राप्ति के मुख्य साधन के रूप में निरूपित करते हैं।

1.3.9 लोकमान्य तिलक का दृष्टिकोण

भगवद्गीता के आधुनिक टीकाकारों में भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम सेनानी एवं भारतीय विद्याओं के विलक्षण विद्वान् लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक का नाम अग्रगण्य है। तीन षट्कों का विषय-विभाग उनको स्वीकार्य नहीं है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **'गीतारहस्य'** में उन्होंने यह तथ्य निरूपित किया कि गीता में कर्म, भक्ति तथा ज्ञान तीनों की एक श्रृङ्खला निर्मित की गई है। तिलक ने शङ्कराचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त को ही मुख्यतः मान्यता प्रदान की है, किन्तु उनके मतानुसार गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कर्मसंन्यास न होकर कर्मयोग है। गीता में ज्ञान तथा भक्ति का प्रतिपादन कर्मयोग की सफलता के लिए ही है। इस प्रकार उनके अनुसार गीता का प्रतिपाद्य **'ज्ञानमूलक-भक्तिप्रधान-कर्मयोग'** है।

1.3.10 पद्मश्री डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर का दृष्टिकोण

भगवद्गीता के समसामयिक व्याख्याकारों में महामहोपाध्याय पद्मश्री डॉ. केशवराव सदाशिव शास्त्री मुसलगाँवकर का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने 'गीतातत्त्वमीमांसा' नामक गीता की अभिनव व्याख्या का लेखन किया है। जिसमें अनेक साधक और बाधक प्रमाणों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि गीता का तात्पर्य बुद्धियोग पुरस्सर कर्मयोग के प्रतिपादन में है।

इस प्रकार विभिन्न भाष्यकारों और टीकाकारों ने अपने मतानुकूल गीता के तात्पर्य को निरूपित करने का प्रयास किया है। अतः सभी तात्पर्य में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

अभ्यास प्रश्न : 2

1. 'भागवतधर्म प्रवृत्तिविषयक है'– गीता के सन्दर्भ में यह तात्पर्य किसका है ?

   क. शङ्कराचार्य

ख. रामानुजाचार्य

ग. महर्षि वेद व्यास

घ. मध्वाचार्य

2. अद्वैत वेदान्त के अनुसार गीता के विषय-विभाग के सम्बन्ध में प्रधान मत हैं –

क. कर्म-उपासना-ज्ञानप्रधान

ख. जीव-ब्रह्मैक्यप्रधान

ग. कर्म-ज्ञानप्रधान

घ. कर्म-उपासना-ज्ञानप्रधान और जीव-ब्रह्मैक्यप्रधान

3. 'शङ्कराचार्य की दृष्टि में गीता का तात्पर्य प्रवृत्तिविषयक न होकर निवृत्तिविषयक ही है'– यह कथन है ?

क. सत्य

ख. असत्य

4. किसके मतानुसार गीता का मुख्य प्रतिपाद्य भगवद्भक्ति तथा शरणागति ही है –

क. शङ्कराचार्य

ख. रामानुजाचार्य

ग. रामानन्दाचार्य

घ. वल्लभाचार्य

5. 'ज्ञानमूलक-भक्तिप्रधान-कर्मयोग' को किसने गीता का तात्पर्य माना है –

क. रामानुजाचार्य

ख. रामानन्दाचार्य

ग. लोकमान्य तिलक

घ. शङ्कराचार्य

1.4 सारांश

गीता महाभारत का महनीय अंश है । यह सनातन वाङ्मय का विश्व प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमें धर्म, दर्शन और नीति का अनुपम समावेश हुआ है। इसके सात सौ श्लोकों में अत्यन्त सरल भाषा में मानवमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया गया है। गीता के महत्त्व का प्रमुख कारण उसका समन्वयात्मक दृष्टिकोण है। इसमें जहाँ एक ओर मानव जीवन से सम्बद्ध अध्यात्म पक्ष के अन्तर्गत मुख्यतः प्रकृति, जीव, जगत्, ब्रह्म, पुरुषोत्तम और मोक्ष का अनुपम वर्णन किया गया है वहीं दूसरी ओर व्यवहारपक्ष के अन्तर्गत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का भी सुन्दर विवेचन किया गया है। गीता आत्मसंयम और आत्मनिरीक्षण पर बल देती है। यह मानव को कर्त्तव्य बोध करानेवाला असाधारण ग्रन्थ है। इसमें कर्मक्षेत्र में संघर्षरत मानवों के लिए दिव्य सन्देश है। इसका प्रयोजन केवल तात्त्विक रूप से विचार परिवर्त्तन करना मात्र नहीं है ; अपितु इसका उद्देश्य तो मानवमात्र को आत्मोत्थान के

लिएप्रेरित करना है । गीता के सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक महत्त्व के कारण ही प्राचीन दार्शनिक सम्प्रदायों के प्रायः सभी व्याख्याकारों ने इसके यथार्थ तात्पर्य को जानने का स्तुत्य प्रयास किया है । इसके आकर्षण का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका व्यापक प्रचार न केवल भारतवर्ष में अपितु सम्पूर्ण विश्व में है । आज विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद तथा अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थ उपलब्ध हैं । किंबहुना 'भगवद्गीता' के रूप में किंकर्त्तव्यविमूढ अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रदान किया गया वह उपदेश आज भी जनमानस को सकारात्मक चेतना एवम् अभिनव दृष्टि प्रदान कर रहा है ।

1.5 शब्दावली

1. प्रस्थानत्रयी – सनातन धर्म-दर्शन में 1. उपनिषद्, 2. भगवद्गीता और 3. ब्रह्मसूत्र – इन ग्रन्थों को प्रस्थानत्रयी कहा जाता है ।
2. कर्मयोग – गीता में प्रवृत्तिरूप धर्म को 'कर्मयोग' कहा गया है ।
3. ज्ञानयोग – गीता में निवृत्तिरूप धर्म को 'ज्ञानयोग'कहा गया है ।
4. प्रपत्ति – रामानुजाचार्य ने 'प्रपत्ति' का अर्थ शरणागति माना है । अर्थात् अनन्यभाव से भगवान् की शरण में जाना ।
5. पुष्टि – वल्लभाचार्य ने भगवान् के अनुग्रह को 'पुष्टि' कहा है । इनके मतानुसार जीव की मुक्ति का कारण केवल भगवान् का अनुग्रह है ।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न क्र.1.

1. क, 2. क, 3. घ, 4. घ, 5. क, 6. घ, 7. घ, 8. घ, 9. ग, 10. घ ।

अभ्यास प्रश्न क्र.2.

1. ग, 2. घ, 3. क, 4. ख, 5. ग ।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भगवद्गीता, शङ्कराचार्य, आनन्दगिरि, मधुसूदन सरस्वती, नीलकण्ठ, धनपतिसूरि, अभिनवगुप्त और बच्चा झा की टीकाओं सहित, निर्णयसागर बम्बई, 1936
2. भगवद्गीता (एकादशटीका सहित) – सं. शास्त्री गजानन शम्भु साधले, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1985
3. गीतारहस्य – लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, रामचन्द्र बलवन्त तिलक, नारायण पेठ, पूणे, 1933
4. गीता प्रवचन (गीता व्याख्यानमाला) – पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 2006
5. गीतातत्त्वमीमांसा – डॉ. केशव राव मुसलगाँवकर, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2023

6. भारतीय दर्शन – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 2011
7. भारतीय दर्शन – डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2010
8. महाभारत का आलोचनात्मक संस्करण– प्र.सं. वि.एस. सुखटणकर, भाण्डारकर प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान, पूणे, 1966
9. शब्दकल्पद्रुम – राधाकान्तदेव बहादुर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, विक्रम संवत् 2024
10. संस्कृतवाङ्मयम् – डॉ.हरिकृष्ण शास्त्री दातार , कीर्तिसौरभप्रकाशन, वाराणसी,1989
11. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – वेदान्त खण्ड – प्रो. संगमलाल पाण्डेय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996
12. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – आर्षकाव्य खण्ड – प्रो. भोलाशंकर व्यास, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2000
13. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. उमाशङ्कर ऋषि शर्मा, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 2012
14. संस्कृत साहित्य तथा संस्कृति – वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2009
15. स्वामी रामानन्दकृत गीता का आनन्दभाष्य, अनुभवानन्दकृत गीतार्थसुधा, रघुवराचार्यकृत अर्थचन्द्रिका और वैष्णवाचार्यकृत गुह्यार्थदीपिका सहित – वेदान्ताश्रम, सिद्धपुर, (गुजरात),1965
16. History of Classical Sanskrit literature – M. Krishnamachariar, Motilal Banarasidass Publishers, Dehli 2016.
17. Vaishnavism Shaivism And Other Minor Religious Systems – Sir R.G. Bhandarkar, Indological Book House, Varanasi, 1965

1.8 बोध प्रश्न

1. भगवद्गीता के रचनाकाल पर प्रकाश डालिए ?
2. भगवद्गीता के नामकरण के आधार की विवेचना कीजिए ?
3. भगवद्गीता की विषय-वस्तु का विस्तृत निरूपण कीजिए ?
4. भगवद्गीता के महत्त्व का सम्यक् प्रतिपादन कीजिए ?
5. भगवद्गीता के उपलब्ध भाष्यों एवं टीकाओं का विवरण प्रस्तुत कीजिए ?
6. शङ्कराचार्य आदि व्याख्याकारों के आलोक में भगवद्गीता के तात्पर्य को स्पष्ट कीजिए ?